आदर्शवाद की बेड़ियों को तोड़ती मन्नू भंडारी जी की कहानी 'यही सच है' का पुनर्मूल्यांकन

मनीषा,

शोधार्थी,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आदर्शवाद में सत्य की अवहेलना या उस पर विजय प्राप्त करके आदर्शवाद की स्थापना की जाती थी, जबकि यथार्थवाद में आदर्श का पालन नहीं किया जाता या माना जा सकता है कि उसका ध्यान नहीं रखा जाता। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में यथार्थ का चित्रण करते हुए भी आदर्श की स्थापना पर बल दिया जाता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद लिखते ही प्रेमचंद का स्मरण हो आता है, उनके विषय में कहा भी गया है – "प्रेमचंद जैसा यथार्थवादी ही संसार में आदर प्राप्त कर सकता है, वह भी कोरे यथार्थवादी नहीं थे वे थे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी अतः दोनों के सम्मिश्रण में ही समाज का कल्याण है"[1]

यथार्थवादी साहित्य में अपना स्थान रखें, परंतु एकांगी बन कर नहीं उन्हें अपने साथ आदर्शवाद भी रखना होगा ,अन्यथा यह केवल हास्यपद बनकर ही रह जाएगा

साहित्य में अक्सर ही नारी का चित्रण पुरुष की आकांक्षाओं (दमित आकांक्षाओं) से प्रेरित होकर किया गया है, लेखकों ने या तो नारी की मूर्ति को अपनी कुंठाओं के अनुसार तोड़ मरोड़ दिया है, या अपनी कल्पना में अंकित एक स्वप्नमयी नारी को चित्रित किया है? लेकिन मन्नू भंडारी की कहानियाँ न सिर्फ इस लेखकीय चलन की काट करती है, बल्कि आधुनिक भारतीय नारी को एक छवि भी प्रदान करती है? मन्नू भंडारी नारी के आँचल को दूध और आँखों को व्यर्थ के पानी से भरा दिखाने में विश्वास नहीं रखती वे उसके जीवन यथार्थ को उसी की दृष्टि से यथार्थ धरातल पर रचती हैं?

यथार्थ के संदर्भ को स्पष्ट करती मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' स्त्री जीवन के अनेक आयामों को दिखाती है। त्रिकोण प्रेम पर आधारित साहित्य में अनेक रचनाएं हैं, किंतु उनमें या तो अधिकतर पुरुष के जीवन में दो स्त्रियों का होना दिखाया जाता है या स्त्री, विवाह पूर्व किसी से प्रेम करती है, और सामाजिक एवं पारंपरिक तथा पारिवारिक बंधनों, जटिलताओं के कारण किसी अन्य से विवाह कर उस घुटन को जीवन भर झेलती रहती है 'मन्नू भंडारी, की यह कहानी पूर्ण रूप से आधुनिक युग एवं आधुनिक स्त्री को चित्रित करती है। जहाँ दीपा (जो कहानी की नायिका है) नए युग की प्रेमिका है। वह परिवार से अलग रहते हुए शोध कार्य कर रही है। जिसके जीवन में किसी का कोई हस्तक्षेप नहीं है। दीपा अपना जीवनसाथी चुनने के लिए भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। जहाँ दीपा पर उम्र के अनुसार परिवार की तरफ से ना विवाह का दबाव है, ना अन्य आदर्शवादी परंपराओं का द्य वह इच्छा अनुसार अपने जीवन का निर्वाह करती है।

"नहीं आना था तो व्यर्थ ही मुझे समय क्यों दिया ? फिर यह कोई आज की ही बात है। हमेशा समझे अपने बताए हुए समय से घंटे 2 घंटे देरी करके आता है, और मैं हूँ कि उसी क्षण से प्रतीक्षा करने लगती हूँ। उसके बाद लाख कोशिश करके भी तो किसी काम में मन नहीं लगा पाती।"[2]

जहाँ 'जैनेंद्र कुमार' के अनुसार, 'स्त्री की सार्थकता मातृत्व है', से तात्पर्य सिर्फ यही है, कि स्त्री जीवन माँ बने बिना निष्फल, निरर्थक है एवं स्त्री का जीवन माँ बनने अथवा गर्भ धारण करने के लिए ही होता है। वहीं 'मन्नू भंडारी' की यह कहानी 'पितृसत्तात्मक' सोच पर गहरी चोट करते तथा स्त्री के जीवन में पुरुषों की बदलती मानसिकता का भी एक सकारात्मक पहलू सामने रखती है। बात चाहे संजय की हो, या निशीथ (पूर्व प्रेमी) की। ईरा (दीपा की सहेली) के आए खत के बारे में संजय को बताने पर संजय खुश होता हुआ कहता है सामाजिक संरचना और नारी की विडंबना को स्पष्ट करते हुए अनेक बार देखा सुना गया और आज भी यह पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हो पाया है, किंतु 'मन्नू भंडारी' की यह कहानी न सिर्फ काल्पनिक कथा है। वरन यह मौलिकता कहानीकार से अधिक इतिहास की देन है। जहाँ स्त्री 'शक्ति' होकर भी उसका सार, उसकी पूर्णता पुरुष में एवं उसकी सहमति में खोजी गई।घर और बाहर की इस समस्या या विडंबना को 'रघुवीर सहाय' की यह कविता बेहद सुंदर ढंग से रखती है–

पढ़िए गीता

बनिए सीता

फिर इन सब में लगा पलीता

निज घर बार बसाइये

होएं कटीली

लकड़ी सीली

आँखे गीली

घर की सबसे बड़ी पतीली

भर–भर भात पकाइयें[3]

सभी–आदर्श, नैतिकता औरतों के हिस्से में क्यों हैं? यह 'पितृसत्ता समाज' स्त्री को आदर्शों की बेड़ियों में जकड़ कर रखते हुए उसे लज्जा रूपी गहना (आभूषण) सौंपता आया है, किंतु स्वयं की तृप्ति के लिए अंततः भी पुरुष ने स्त्री को भोग की वस्तु ही समझा है, किंतु इतना होने पर भी यदि स्त्री भोगने वाले का चयन स्वयं करना चाहे, तो उसका चरित्र कलंकित हो जाता हैं जब औरत की नियति को लेकर शंकाएं उठाई जाती हैं, परंपरागत मूल्यों की शास्वता पर सवाल किए जाते हैं, और बदली स्थितियों से पैदा समस्याओं के समाधान तलाश किए जाते हैंद्य हर सम्मिलित अपराध की सजा औरत ही क्यों भोगे? क्या प्रेम सचमुच अपराध है"?[4]

प्रेम दैहिक नहीं होता, उसका मार्ग तो हृदय से होकर गुजरता हैं जहाँ दीपा अपने मन को खंगालती है, और अपने हृदय की सुनती है। निशीथ से पुनः कलकत्ता में मिलने, उसे स्वयं के लिए भागदौड़ करता देख तथा निशीथ के साथ अपने पुराने संबंध को याद करके वह स्वयं के विचारों की टकराहट से जूझती है, अपने अंतर्मन को खोजती है। कभी मन ही मन निशीथ के साथ बिताए समय को अपने चित्त से हटाकर संजय का स्मरण कर समर्पण कर देती है, तो कभी निशीथ के हाल–चाल पूछ लेने पर व्यथित हो पूर्व–प्रेमी की ओर आकर्षित हो उस और चलने लगती हैं।

अपने अंतर्मन की भावनाओं से जूझते हुए दीपा (इस कहानी की नायिका) कई बार अपने आपको असमंजस में पाती है, किंतु वह कमजोर नहीं है, हर बार अपने मन की सुनती है तथा उसी ओर चलने की ठान भी लेती है। दीपा स्वतंत्र है, इसलिए वह इस अवधारणा को स्वीकार कर लेती है, कि "पहला प्रेम वास्तव में सच्चा प्रेम होता है। बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का और भरमाने का प्रयास मात्र होता है।"[5] इसी तरह "वे पत्नियाँ, जो पति की आज्ञा का उल्लंघन करती है, मृत्यु के समान है, जहरीली सर्पाणियाँ हैं, राक्षसनियाँ हैं, उनका क्या उपयोग है,उनका सर्वनाश हो।"[6]

इस प्रकार की खतरनाक मानसिकता अगर समाज में व्याप्त हो जहाँ पुरुष को स्वामी तथा स्त्री को दास भाँति वरदान एवं श्राप मिलता रहा हो, वहाँ क्या समानता जैसे शब्द की कल्पना भी करना संभव होगा? जहाँ उसे एक सामान्य, सजीव व्यक्ति होने की श्रेणी से भी विरक्त कर दिया गया हो, 'मन्नू भंडारी' की इस कहानी के माध्यम से स्त्री पक्ष तथा उसकी भावनाओं को व्यक्त होते हुए देखने का जो सौभाग्य साहित्य में मिला, वह इस कहानी की मौलिकता, उपयोगिता, सार्थकता को उद्धृत करती है। मन चंचल होता है, जीवन में बेहतर पाने की चाह रखता है, और मन के वशीभूत होकर कई बार व्यक्ति जीवन और प्रेम के बीच सामंजस्य बिठाने का भरसक प्रयास भी निरंतर करता रहता है। यह सभी बातें स्वभाविक हैंद्य चाहे स्त्री की बात हो या पुरुष कीद्य जिस प्रकार आंखें बंद कर लेने से जग में अंधेरा नहीं हो जाता उसी प्रकार स्त्री मन को, उसकी भावनाओं को, उसके व्यक्तित्व को, आदर्शों की और परंपराओं की परिभाषा में लपेट देने से स्त्री के हृदय की गति ना तो रुक जाती है, न हीं भावनाओं के प्रभाव में, और ना ही उसका मन उसे कुछ महसूस कराना बंद कर देता है।

हालाँकि इस कहानी की नायिका भले ही विवाहित ना हो किंतु वह समाज की उस आदर्शवादी परंपरा तले भी खुद को नहीं रखने देना स्वीकार करती जहाँ स्त्री मन के लिए अनेक मापदंड पुरुषों ने तय किए हैं कि, भारतीय स्त्री एक बार जिसे मन से स्वीकार कर ले तदुपरांत उसके छल कपट आदि पर भी उसी के लिए जीवन बिताएं और उसी के लिए सती हो जाए। पुरुष के लिए ऐसा कोई विधान ना पुरुष ने बनाया न हीं स्त्रियों को बनाने दिया। क्या पुरुष भारतीय नहीं होते? दीपा पुनः पूर्व–प्रेमी को पा लेने का निश्चय कर मन ही मन संजय को सब कुछ बता कर उसे अस्वीकार करने का ठान लेती है।

ठीक इसी तरह का विद्रोह 'मैत्रयी पुष्पा' अपने लेख में करती हैं' – "औरत करती वही है, जो उसका दिल करता है, दिखावा चाहे वह जो करेंद्य समाज के लिए स्त्री के प्रेम संबंध अनैतिक हो सकते हैं, मगर स्त्री के लिए नैतिकता की पराकाष्ठा है।"[7] कहानी का अंत भी पूरी कहानी की तरह कोतुहल से भरा हुआ है, 'मन्नू भंडारी' की कहानी 'यही सच है' से यह तात्पर्य नहीं, कि जो समक्ष है वही सच हो, या जो अंतर मन में है वही सच है। यहाँ व्यक्तित्व में गहन द्वंद प्रतीत होता है कि शायद जो हो जाए या जिस पल मन जो करने को मजबूर कर दे वही सच है और व्यवहारिकता भी यही है।

अतः आधुनिक युग की इस कहानी के माध्यम से देखा व समझा जा सकता है, कि स्त्री के मन में भी अपने प्रेम और अपने विचारों के प्रति अनेक बार टकराहट होती है, किंतु आदर्शो में लिपटी होने के कारण स्त्री स्वयं में ही घुटती रहती है, यह कहानी इस घुटन को चीर कर इतने सहज और अनाडम्बर ढंग से निरंतर द्वंदात्मक ता एवं भाव बोध को व्यक्त करती नजर आती है। 'यही सच है' मैं सच और झूठ का निर्णय किसी नैतिकता, किसी सौंदर्य अथवा किसी अन्य मापदंड के आधार पर नहीं किया गया यह तो स्पष्ट है। यह निर्णय तो मात्र आवेग पर होता हुआ दिखता है, और आवेग मात्र क्षणिक होता है और व्यक्ति को निर्णय में झोंक देता है। सच, मन के शायद किसी कोने में पड़ा रह जाता है और आवेग में दिखता हुआ झूठ, सच के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यह कहानी श्रीमन का निर्वचन विशिष्ट और स्वीकार्य योग्य रूप में करती है। कहानी के संदर्भ में स्त्री मन की स्थितियों का उतार–चढ़ाव देख 'विश्वनाथ त्रिपाठी' कहते हैं– 'कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'मन्नू भंडारी' की यह कहानी 'यही सच है' पुरुष केंद्रित सोच को भले ही जड़ से मिटाने में अक्षम हो किंतु उसके सामने प्रश्नचिन्ह तो अवश्य खड़ा करती है। स्त्री के जीवन का प्रयत्न निरंतर उसके

अधिकारों के लिए परिवार और समाज से संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ता है। कई बार वह टूटती है, बिखरती है।[8] तो कई बार वह अपने आप को स्थापित भी करती है, 'मन्नू भंडारी' जीवन के इन भाव बोधों का आलेखन करने वाली सशक्त कहानीकार है।

संदर्भ ग्रंथ

1) साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद, हिंदी एस्से
2) वहीं सेरू प्रश्न संख्या 4
3) यही सच है, मनु भंडारी
4) वहीं से, पृष्ठ संख्या 11
5) आदमी की निगाह में औरत राजेन्द्र यादव (पृ.–24)
6) यही सच है, मनु भंडारी
7) यही सच है, मनु भंडारी
8) यही सच है, मनु भंडारी